International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232, Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 06-01-2021, Accepted: 22-02-2021, Published: 30-03-2021
Volume 7, Issue 2, 2021, Page No. 56-60

जयशंकर प्रसाद का नाट्य साहित्य

डॉ. सीमा शर्मा

सहायक प्रोफेसर, जानकी देवी मेमोरियल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

सारांश

जयशंकर प्रसाद का नाट्य साहित्य प्रथम महायुद्ध की विभीषिका झेलती मनुष्यता का युग था। प्रसाद के नाटक ऐतिहासिक होते हुए भी आधुनिक मूल्यों के क्षरण, व्यक्ति के अस्तित्वबोध, संघर्ष, आदर्शवादी स्वप्न, कटु यथार्थ और उनके संघर्ष से उत्पन्न विडम्बना का बोध कराते हैं, जिसमें नियति महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

मूल शब्द: महायुद्ध की विभीषिका, संघर्ष-पलायन, मानवीय मूल्य, विडम्बना, सम्बन्धों का बिखराव, मानव अस्तित्व का संकट, अमानवीय परिस्थितियाँ, कुरूचिपूर्ण मस्तिष्क, सप्तपदी की शपथ, वैयक्तिक त्रासदी।

प्रस्तावना

ऐतिहासिक दृष्टि से प्रसाद युग प्रथम महायुद्ध की विभीषिका को झेलती मनुष्यता का युग था। प्रथम महायुद्ध की विभीषिका से जहाँ एक ओर तत्कालीन समाज के चेहरे पर पीड़ा और आतंक की लकीरें अंकित थीं, वहीं विद्रोह के स्वर भी प्रस्फुटित होने लगे थे। "सम्पूर्ण प्रसाद युगीन साहित्य अपने युग की आशा- आकांक्षाओं, स्वप्न-कल्पनाओं, अभाव- अतृप्तियों, संघर्ष-पलायनों तथा चिन्तन- दर्शन से सहज स्वाभाविक रूप में उद्भूत हुआ है ।"

प्रसाद के नाटकों का मूल आधार अन्तर्द्वन्द्व एवं विरोध का स्वर है। यह अन्त: संघर्ष उनके नाटकों में बहुत अधिक दिखाई देता है। पात्र की जो बाह्य परिस्थिति है, उसके सर्वथा विपरीत उसकी आंतरिक स्थिति है। इन दोनों परिस्थितियों के द्वंद्व से नाटक में विडम्बना का निर्माण होता है। उनके नाटक चरित्र के द्वंद्व को लेकर चलते हैं और उनकी सबसे बड़ी सफलता चरित्र निर्माण में ही है।

स्कन्द गुप्त (1928): यह प्रसाद के प्रौढ़ -चिन्तन की नाट्यकृति है। इस नाटक में अन्तर्बाह्य संघर्ष की स्थिति है, जो अनेक विडम्बनाओं को उद्घाटित करती है। स्कन्द गुप्त उच्चतम मानवीय मूल्यों का समर्थक है परन्तु स्वयं उसका जीवन अनेक प्रकार के राजनीतिक षड्यंत्रों, पारिवारिक वैमनस्य, सामाजिक सम्बन्धों में बिखराव, बाह्य आक्रमण और व्यक्तिगत वैमनस्यों में उलझकर रह जाता है। वह अनेक प्रकार के विरोधों की चरम सीमा खड़ा है " वह क्षुद्र लड़ाईयों की अपेक्षा उच्च मूल्यों की तलाश को अपने जीवन का उद्देश्य मानता रहा। साथ ही उन लड़ाईयों से वह दूर भी नहीं रह सका... वह युद्ध और रक्तपात का विरोध करता है, फिर भी उसे राष्ट्र के लिए लड़ना पड़ता है। वह प्रेम चाहता है किन्तु प्रेम अन्ततः उसे नहीं मिलता। जिस व्यक्ति पर वह विश्वास करता है, वही उसके

कोमल विश्वास को भंग करता है।

स्कंदगुप्त अपने राष्ट्र के बिखराव को रोकने का भरपूर प्रयास करता है, पर इस प्रयास में वह स्वयं टूट जाता है। अपने ' व्यक्ति' के बिखराव से वह बच नहीं पाता। जिन समस्याओं के विरोध में उसका संघर्ष प्रारम्भ होता है अंत में वह उन्हीं समस्याओं से घिरा रहता है। स्कन्दगुप्त का संघर्ष उसे संघर्षहीन शांत जीवन की ओर खींचता है, पर वह अपने अशांत जीवन से बाहर नहीं निकल पाता, उन परस्पर विरोधी परिस्थितियों से बाहर निकलने की छटपटाहट ही उसमें दिखाई देती है, इसी कारण वह चक्रपालित से कहता है- "चक्र ऐसा जीवन तो विडम्बना है, जिसके लिए दिन-रात लड़ना पड़े।"

नाटक के आरम्भ में जिस स्कन्दगुप्त का प्रचण्ड, वीर, साहसी, संघर्षशील रूप सामने आता है, वही नाटक के अंत में स्वयं को दयनीय अवस्था में पाता है और असहाय अनुभव करता है।

रामा (आश्चर्य से): देखा था एक दिन वही तो है जिसने अपनी प्रचण्ड हुंकार से दस्युओं को कंपा दिया था, ठोकर मारकर सोयी हुई अकर्मण्य जनता को जगा दिया था। जिसके नाम से रोंये खड़े हो जाते थे, भुजाएं फड़कने लगती थीं। वही स्कन्द रमणियों का रक्षक, बालकों का विश्वास, वृद्धों का आयोजन और आर्यावर्त की छत्रछाया? नहीं, भ्रम हुआ।तुम निष्प्रभ, निस्तेज उसी के मलिन चित्र से तुम कौन हो? स्कन्दगुप्त! (बैठकर) आह! मैं वही स्कन्दगुप्त हूं- अकेला, निस्सहाय ! "

चन्द्रगुप्त (1939): चन्द्रगुप्त के प्रकाशन के समय भारतीय स्वाधीनता आंदोलन आशाजनक स्थिति की ओर संकेत कर रहा था, पर फिर भी अनेक प्रकार के राजनीतिक षड्यंत्र, दुष्चक्र, सामाजिक, राजनीतिक जीवन में देखने को मिल रहे थे।" प्रसाद के नाटकों का मूल आधार द्वंद्व एवं विरोध इस नाटक में भी आरम्भ से अंत तक प्रधान स्वर में उभरा है, यद्यपि अंत: संघर्ष एवं अन्तर्मन्थन की तुलना में बाह्य विरोध एवं संघर्ष ने अधिक स्थान पाया है।"

इस नाटक का प्रत्येक पात्र चाणक्य की कूटनीति और संकेत के अनुसार चलता है। प्रत्येक महत्वपूर्ण घटना का नियंता स्वयं चाणक्य है। परंतु फिर भी उसके मन में तीव्र अन्तर्द्वन्द्व चलता रहता है। कूटनीति के कारण उसके अपने ह्रदय की कोमल भावनाएं कुचल कर रह गयी हैं। वह जीवन में जो नहीं बनना चाहता था, वह बन गया है।

चाणक्य: वह सामने कुसुमपुर है, जहाँ मेरे जीवन का प्रभात हुआ था। मेरे इस सरल ह्रदय में उत्कट इच्छा थी कोई भी सुन्दर मन मेरा साथी हो। प्रत्येक नवीन परिचय में उत्सुकता थी और उसके लिए मन में सर्वस्व लुटा देने की सन्नद्धता थी परन्तु संसार- कठोर संसार ने सिखा दिया है कि तुम्हें परखना होगा!... मैं- अविश्वास, कूटचक्र और छलनाओं का कंकाल! कठोरताओं का केन्द्र! आह! तो इस विश्व में मेरा कोई सुह्रद नहीं? "

चन्द्रगुप्त कथा के केन्द्र में है पर स्वयं उसका अपना कोई व्यक्तित्व नहीं है।वह शासक तो है,पर चाणक्य के हाथ की कठपुतली है। नाटक में ऐसी अनेक घटनाएं होती हैं जिनका उसे कार्य की संपूर्णता पर ही पता चलता है। वह नहीं चाहता कि उसका राज्य कूटनीति और कुचक्रों से चले क्योंकि ह्रदय से वह कोमल भावनाएं रखता है,पर फिर भी समय और परिस्थितियों में फँसकर उन कुचक्रों और कूटनीतियों का एक अंग बन जाता है।

कल्याणी चन्द्रगुप्त पर अनुरक्त है, चन्द्रगुप्त स्वयं भी उसके प्रति कोमल भावनाएं रखता है, पर चाणक्य की कूटनीति एक ही तीर से दो

कंटकों- कल्याणी और पर्वतेश्वर को निकाल फेंकती है। कल्याणी द्वारा पर्वतेश्वर का वध होता है और वह स्वयं आत्मघात कर लेती है। इस घटना से चन्द्रगुप्त बहुत दुखी और संतप्त होता है। वह अपने उद्देश्य की पूर्ति में किसी नारी को मोहरा नहीं बनाना चाहता था, पर वहाँ वैसा ही हुआ। चन्द्रगुप्त की कोमल भावनाएँ बहुत आहत होती हैं। इस पर चाणक्य कहता है- चन्द्रगुप्त आज तुम निष्कंटक हुए।

चन्द्रगुप्त: गुरुदेव ! इतनी क्रूरता?

चाणक्य: महत्वाकांक्षा का मोती निष्ठुरता की सीपी में रहता है। चलो अपना काम करो, विवाद करना तुम्हारा काम नहीं।"
चन्द्रगुप्त कोमल हृदय है, पर चाणक्य द्वारा निरन्तर उसे अपनी कोमल भावनाओं को कुचल कर कूटनीति का अंग बनने के लिए विवश किया जाता है। वह मालविका की ओर झुकता है, पर वहाँ भी उसे चाणक्य की प्रतारणा ही मिलती है।

चन्द्रगुप्त: रणभेरी से पहले यदि मधुर-मुरली की एक तान सुन लूं, तो हानि न होगी, मालविका, न जाने क्यों आज ऐसी कामना जाग पड़ी है।

चाणक्य: छोकरियों से बात करने का समय नहीं है मौर्य !

चन्द्रगुप्त: शुभे, मैं तुम्हारी सरलता पर मुग्ध हूं।"
चन्द्रगुप्त की ये सभी कोमल भावनाएँ साकार रूप नहीं ले पातीं। चाणक्य चन्द्रगुप्त को अपनी कोमल भावनाएँ अभिव्यक्त करने का अवसर ही नहीं देता। चन्द्रगुप्त उसी से प्रेम प्रदर्शन करता है, जिससे चाणक्य उसे कहता है और उसका यह प्रेम -प्रदर्शन प्रेम कम राजनीति अधिक है। यद्यपि वह कहता है " मैं मगध का उद्धार करना चाहता हूँ। परन्तु यवन लुटेरों की सहायता से नहीं।" पर अन्ततः उसे अपने राज्य को स्थापित करने के लिए यवन कन्या कार्नेलिया से विवाह करना पड़ता है। वह अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए स्त्रियों को मोहरा नहीं बनाना चाहता, पर, फिर भी, उसके द्वारा नाटक के स्त्री पात्र, उसके उद्देश्य प्राप्ति का मोहरा बनते जाते हैं।

ध्रुवस्वामिनी (1933): 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक में नायिका ध्रुवस्वामिनी का पति रामगुप्त कापुरूष और कुल का कलंक है। प्रजा को सुरक्षा का आश्वासन देने के बहाने वह शकराज को अपनी पत्नी उपहार स्वरूप देने को तैयार हो जाता है। शक संधि के बहाने वह अपनी विरोधी शक्तियों (चन्द्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी) से सहज छुटकारा चाहता है। वह कहता है " जिसकी भुजाओं में बल न हो उसके मस्तिष्क में कुछ होना चाहिए।" रामगुप्त के इस कायरता और कुरूचिपूर्ण मस्तिष्क के कारण ध्रुवस्वामिनी का जीवन व्यंग्य, विडम्बना एवं अन्तर्व्यथा की गहन अमानवीय परिस्थितियों से गुजरता है। रामगुप्त अपनी प्रजा और अपनी पत्नी के स्वाभिमान के लिए युद्ध न करके संधि स्वीकार करता है। ध्रुवस्वामिनी अपने पति की कायरता के लिए उसे ललकारती है।

ध्रुवस्वामिनी (तीव्र स्वर से): ओह और आप लोग कुबडों, बौनों और नपुंसकों का नृत्य देखेंगे। मैं जानना चाहती हूं कि किसने सुख- दुख में मेरा साथ न छोड़ने की प्रतिज्ञा अग्निवेदी के सामने की है?

रामगुप्त: (चारों ओर देख कर) किसने की है? कोई बोलता क्यों नहीं? "। इस प्रकार ध्रुवस्वामिनी सप्तपदी की शपथों की ओर संकेत करते हुए अपने स्वाभिमान की रक्षा करने का निवेदन करती है, पर उसका सारा निवेदन व्यर्थ हो जाता

है। ध्रुवस्वामिनी के पति रामगुप्त द्वारा समस्त सभासदों के समक्ष सप्तपदी की शपथों का उपहास उड़ाया जाता है। उसकी यही पीड़ा इन शब्दों में व्यक्त हुई है- "उसे छोड़ दो कुमार। यहाँ पर एक वही नपुंसक तो नहीं है बहुत से लोगों में। किस-किसको निकालोगे?"

ध्रुवस्वामिनी एक मानवी न रहकर 'उपहार 'की वस्तु घोषित हो जाती है क्योंकि उसका पति उसकी रक्षा करने में असमर्थ है। हिजड़े, बौने और कुबड़े का अशिष्ट हास्य- वार्तालाप नाटकीय व्यंग्य को सघन करता हुआ ध्रुवस्वामिनी की त्रासदी को घनीभूत कर देता है।

ध्रुवस्वामिनी नाटक में वैयक्तिक त्रासदी जितनी तीव्र है, उतनी ही सघन उसकी राजनीतिक-सामाजिक स्तर की विडम्बना है। समाज एक ऐसे क्लीव शासक को झेल रहा है जिसे निरन्तर असुरक्षा का भय सताता है। सर्वत्र उसे स्वयं के विरुद्ध कुचक्र की गंध आती है। शत्रु राजा शकराज आक्रमण के लिए तत्पर है और वह युद्ध से पलायन के विषय में सोचता है।। वह बिना युद्ध किए हुए ही अपनी पत्नी शकराज को और शकराज के सैनिकों के लिए अपने सैनिकों की पत्नियां उपहार में देने के घिनौने संधि प्रस्ताव को स्वीकार कर लेता है।

प्रसाद के नाट्य साहित्य का मूल्यांकन करने पर यह दृष्टिगोचर होता है कि प्रसाद के नाटकों ने राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना का प्रसार करके भारतीय मानस में देशभक्ति की भावना जागृत की। भारत के अतीत की गौरवगाथा भारतीय जनता को संघर्ष की प्रेरणा दे रही थी तो दूसरी ओर समाज में व्याप्त बुराईयों को भी खत्म करने की इच्छा बलवती होती जा रही थी। प्रसाद के नाटकों में पात्र के बाह्य संघर्ष के साथ-साथ मानसिक द्वन्द्व की भी अभिव्यक्ति मिलती है।

प्रथम महायुद्ध की विभीषिका के पश्चात् मानव अस्तित्व का संकट गहराता जा रहा था, उस विडम्बना की अभिव्यक्ति भी प्रसाद के नाटकों में मिलती है। 'स्कन्दगुप्त' नाटक का मुख्य पात्र स्कन्दगुप्त युद्ध की अपेक्षा मानवीय मूल्यों को महत्व देता है। वह मानवता पर गहराते युद्ध के भयावह संकट को समझता है।इसी कारण वह युद्ध से दूर रहना चाहता है। पर विडम्बना यह है कि युद्ध और रक्तपात से वह बच नहीं पाता। इसी प्रकार' चन्द्रगुप्त' नाटक के चाणक्य में भी भरपूर कोमल भावनाएँ और मानवीय संवेदनाएँ हैं लेकिन नियति यह है कि वह भी युद्ध के रक्तपात और राजनीति की कुटिलताओं से जूझता है जबकि ह्रदय से वह उन सभी परिस्थितियों से बचना चाहता है।

'ध्रुवस्वामिनी' नाटक की नायिका ध्रुवस्वामिनी वैयक्तिक एवं सामाजिक स्तर पर अस्तित्व के संकट से जूझती है। अपने अन्य नाटकों से इतर यथार्थवादी चेतना को स्वीकार करते हुए प्रसाद ने ध्रुवस्वामिनी, रामगुप्त और चन्द्रगुप्त के त्रिकोण के माध्यम से नारी अस्मिता की विडम्बना को प्रस्तुत करते हुए सदियों से पददलित नारी समाज के सम्मुख एक विकल्प रखा है- जब पति अपनी पत्नी की रक्षा न करके उसका ' वस्तु' की भाँति व्यापार करने लग जाये तब पत्नी को अपने अस्तित्व की रक्षा करते हुए पति का परित्याग करने का पूर्ण अधिकार होना चाहिए। तत्कालीन समाज में प्रसाद का यह तर्क निस्संदेह साहसिक प्रयास है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी- जयशंकर प्रसाद
2. रंगमंच और जयशंकर प्रसाद के नाटक - डॉ. रीतारानी पालीवाल
3. प्रसाद के नाटक: स्वरूप और संरचना- डॉ. गोविन्द चातक
4. जयशंकर प्रसाद (भाग 1)- रंग दृष्टि: नाटक

के लिए मंच, संपादक- डॉ. महेश आनंद
5. प्रसाद नाट्य और रंगशिल्प- डॉ. गोविन्द चातक
6. हिन्दी नाटक पहचान और परख- संपादक डॉ इन्द्रनाथ मदान